HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

भारत की शिक्षा नीति और राजभाषा नीति

राहुल खटे

rahulkhate@gmail.com

स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, हुब्बल्ली में उप प्रबंधक (राजभाषा) पद पर कार्यरत

जैसा कि यह सभी जानते हैं कि भारत 15 अगस्त 1947 को अँग्रेजों की गुलामी से आजाद हुआ। सब यही समझते हैं कि हम उसी दिन स्वतंत्र हुए। लेकिन यह एक बहुत बडा भ्रम था। महात्मा गांधी ने अँग्रेजों से सामने बिना किसी शर्त के पूर्ण स्वतंत्रता की माँग रखी थी। लेकिन भारत के ही कुछ स्वार्थी लोगों ने अँग्रेजों की राष्ट्र विरोधी शर्तों को सशर्त स्वीकार कर लिया था, जिसमें एक भाषा नीति भी थी। अँग्रेजों को पता था कि यह देश अपनी भाषा के बल पर आगे और भी प्रगति कर सकता है। इसी को रोकने के लिए अँग्रेजों ने कुछ अँग्रेजी प्रिय भारतीयों के साथ मिलकर भारतीय शिक्षा पद्धति में संस्कृत को स्थान न देने जैसे राष्ट्र विरोधी शर्तें भी शामिल की। अब प्रश्न यह उठता हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न क्यों हुई ? समस्या जितनी गंभीर होती है, उसके कारण भी बहुत शोधगम्य होते हैं। इसकी शुरूआत भी आजादी के पहले से होती है। मैकाले नामक अँग्रेज के ही वह जहरीले बीज हैं, जो अब फलीभूत हो रहें हैं। दरअसल, अँग्रेजों ने भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का सर्वेक्षण करने के बाद, जो शिक्षा नीति भारत को गुलाम बनाये रखने के लिए बनायी थी, वही नीति स्वतंत्रता के बाद भी कुछ लोगों द्वारा जारी रखी गई, जिसका परिणाम हैं कि आज हमारी शिक्षा व्यवस्था रोजगार की गारंटी नहीं देती। शिक्षित होने के बाद भी नैतिकता की कोई गारंटी नहीं है तथा स्थिति तो और भी बदतर तब हो जाती है, जब पढे-लिखे शिक्षा प्राप्त लोगों में इन सभी

स्थितियों के बारे में उदासिनता पायी जाती है। उनमें न भारतीय संस्कृति के प्रति आदर है और न ही उन्हें इसकी परवाह है।

उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक पीढ़ी के मन में भारतीय इतिहास के बारे में गौरव की भावना नहीं है, क्योंकि उनके पाठ्यक्रम में हमने वही परोसा ही है, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अपने आप को सर्वश्रेष्ठ भारतीय समझने बजाय अपने आप को कुंठित एवं दब-कुचले महसूस करते हैं। इसका कारण उनका पाठ्यक्रम हैं, जिसमें ज्ञान-विज्ञान का संपूर्ण स्रोत पश्चिमी विद्वान है। उन्हें भारतीय वैज्ञानिकों का नाम भी पता नहीं होता है। उनके लिए भारत तो केवल जमीन का टुकडा मात्र है। ऐसा हो भी क्यों ना ? अँग्रेजों की खुराफाती दिमाग जाते-जाते भी हमें भेदभाव और अज्ञान का शिक्षा विरासत में दे गए।

किसी ने सही कहा हैं कि कोई भी देश अपने भविष्य का निर्माण नहीं कर सकता, जो अपने अतित को भूल जाता है। पश्चिमी शिक्षा हमें डार्विन का **विकासवाद** सिखाती है, लेकिन **आत्मा** के अस्तित्व पर हमें आज भी संदेह है। हमने **ग्लोबलाइलेशन** को तो अपनाया है, लेकिन **'वसुधैव कुटुंबकम्'** का नारा भुल गये हैं। **आर्यभट्ट** नामक उपग्रह हमने अंतरिक्ष में स्थापित किया हैं, लेकिन हमारे बच्चों के **पाठ्यक्रम** में **आर्यभट्ट के बारे में** एक भी पाठ नहीं हैं। **सुश्रुत** हॉस्पिटल की नेमप्लेट लगी है, लेकिन **सुश्रुत** महाशय कौन है, हमें नहीं पता। जिस **संस्कृत** की वैज्ञानिकता पर स्वयं **नासा** शोध कर रही है, वह हमारे देश की शिक्षा में हो अथवा न हो, इस पर विवाद है। ऐसे कई सारे उदाहरण हैं, जो केवल भ्रम के कारण पैदा किये गये है।

अब सवाल उठता है कि इन सब से निजात कैसे पाया जाए ? इसका एक आसान सा उपाय है-शिक्षा नीति में भाषा को उचित सम्मान देना। भारतीय भाषाओं को शिक्षा की प्राय: सभी विधाओं में गौण माना गया है। विज्ञान की दौड में हम यह भूल गये है कि प्रकृति का भी अपना एक विज्ञान है, जिसे हमारे मनीषियों/ऋषियों ने जाना था। प्रकृति को पूजा करने के पीछे इसी प्राकृतिक विज्ञान को समझना था। भारत के सभी उत्सव/त्योहार प्रकृति के परिवर्तनों से जुड़े है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित सिद्धांतों पर आज भी शोध की आवश्यकता है। इसमें भाषा के अध्ययन की विशेष भूमिका है। संस्कृत, जिसे कुछ लोग मृत मानते है, भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में उसके आज भी शब्द तत्सम/तत्भव और अपभ्रंश रूप में जीवित है।

बायनरी सिस्टम, जिससे कंप्यूटर की प्रणाली चलती है, उसे हमारे पिंगल ऋषि ने सर्वप्रथम दुनिया के सामने रखा (विश्वास करना भी कठिन है)। आर्यभट्ट के गणित सिद्धांत आज भी गणित विषय का भूषण बने हुए है। डार्विन के विकासवाद को यदि पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत के साथ जोडकर देखा जाए, तो पुनर्जन्म के सिद्धांत में भी विकासवाद की छाप दिखाई देती है। 84 लाख योनियों के बाद मनुष्य जन्म की प्राप्ति का सिद्धांत इसी विकासवाद की ओर इशारा करता है। अपने पूर्वजों को बंदर मानने से बेहतर है कि हम ऋषियों को हमारा पूर्वज माने, गोत्र प्रणाली हमारे पूर्वजों के नामों की तरफ ही इशारा करती है कि हम उस ऋषि के कुल में उत्पन्न हुए है। दशावतारों की कहानी भी मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर विकासवाद की कडियां ही लगती हैं। मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, परशुराम, वामन, राम तथा कृष्ण/बलराम का स्वरूप जीव सृष्टि के उत्पत्ति से लेकर आज तक के विकसित मानव का ही तो वर्णन है। केवल अलंकारिकता और चमत्कारों को थोडा अलग रखें, तो अवतारों का क्रम मनुष्य विकास की अवस्थाओं की तरफ संकेत करता है। भारतीय आयुर्वेद और योग की महिमा से आधुनिक विश्व भी परिचित हो रहा है। मच्छ अवतार जल से जीवन के प्रारंभ होने के वैज्ञानिक तथ्य की तरफ इशारा करती है, कच्छ अवतार उभयचर जीव जो पूर्णत: जलचर से विकास होकर उभयचर बनने की तरफ संकेत देता है, वराह अवतार पूर्णत: जमीन पर जीने वाले जीवों के विकास की ही कहानी है, नृसिंह प्राणि सदृश मनुष्य के विकास का ही एक चरण है, वामन रूप छोटे बच्चे के रूप में विकास का ही एक रूप है, परशुराम आक्रामकता और युद्धों को दिखाता है जबकि उसके बाद का पुरूषोत्तम राम का रूप पूर्ण मानव का प्रतीक है, जो न केवल पूर्ण शारिरिक रूप से बल्कि बौद्धिक रूप से भी मनुष्य के विकास को इंगित करता है। कृष्णावतार पशुपालक (गोपालक) मनुष्य का रूप है और उनके भाई बलराम के कंधों पर दिखाई देने वाला हल कृषिव्यवस्था का ही प्रतीक है। यह क्रम मनुष्य के विकास के ही विविध चरण हैं। जिसे अलंकारिकता और अतिशयोक्तियुक्त वर्णन ने काल्पनिक बना दिया, जो कि वास्तविक ही है।

दरअसल, पाश्चात्य विद्वानों के भारतीय साहित्य में घुसपैठ और उनके गहन तथा आलंकारिक अर्थ को न समझने के कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई है।

अँग्रेजों के आगमन और उनका भारतीय सामाजिक व्यवस्था अत्याधिक हस्तक्षेप के कारण भारत की सामाजिक और अर्थव्यवस्था के साथ साथ देश की शिक्षा व्यवस्था को जो क्षति पहुंची है, उसको दूर करने के लिए शिक्षा व्यवस्था में ऐसे परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस हो रही है, जिसे ध्यान मे रखकर नई शिक्षा नीति की पहल हो रही है।

150 वर्षों की गुलामी और उसके बाद अपनाई गई शिक्षा व्यवस्था के ही यह सब परिणाम है। लूट की भावना से आये अँग्रेजों के आगमन और जाते-जाते फूट की भावना का बीजारोपण और उससे फलीभूत मानसिकता का असर ही तो हम देख रहे हैं। इन सब में अँग्रेजी माध्यम का जलसिंचन ने व्यवस्था के वटवृक्ष को इतना घनीभूत कर दिया है कि अब ऐसा लगने लगा है कि ***'अब न होगा इस निशा का फिर सवेरा।'*** *किंतु 'प्राचि की मुस्कान फिर–फिर भी तो है। स्नेह का आव्हान फिर–फिर और नीड का निर्माण फिर– फिर भी तो है, जिसे* हमें ही करना होगा।

इस स्थिति से उबरने में थोडा और समय लगेगा। समाज के सभी स्तरों में इस विषय के प्रति जागरूकता की आवश्यकता है, विशेष रूप से शिक्षा व्यवस्था में।

प्राय: देखा जाता है कि सरकारी नौकरी में आने के बाद कर्मचारियों को हमारी राजभाषा हिंदी सिखाने के प्रयास होते है, जो कुछ हद तक कामयाब भी हैं, लेकिन एक बार घडा पकने के बाद उसे आकार देना व्यर्थ होता है। हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था पहले अँग्रेजीयत का पाठ पढाती है और बाद में हम उन्हे हिंदी का पाठ पढाते है। इसका एक आसान सा उपाय यह है कि शिक्षा व्यवस्था में एक ऐसी व्यवस्था हो, जो सभी समस्याओं का समाधान कर पाए। हिंदी माध्यम से शिक्षा ही इसका असरदार उपाय दिखाई देता हैं। इससे दोहरा फायदा होने की संभावना है। एक तो पाठ्यक्रमों को यदि हिंदी में उपलब्ध कराया गया, तो शिक्षा, वैद्यक, कृषि, वाणिज्य, कंप्यूटर, विधि, तकनीकी आदि विषय, जो काफी जटिल माने जाते है, आसानी से समझ मे आ सकते है, वही दूसरी तरफ इन्हें हिंदी माध्यम से पढाने के कारण इसमें लगने वाले समय में भी बचत हो सकती है। जैसे-जिस पाठ्यक्रम को चार या छ: वर्ष लगतें है उसे दो या चार वर्षों में ही पूरा किया जा सकता है। साथ ही अँग्रेजी को समझने के लगने वाली माथापच्ची से भी निजाद मिल जाएगी। केवल

देश में कार्य करने और विदेश में कार्य करने की इच्छा रखने वाले इस प्रकार का वर्गीकरण किया जाए, तो वे विद्यार्थी जो विदेशों में अथवा अँग्रेजी में शिक्षा प्राप्त नहीं करना चाहते हैं, उन्हें अँग्रेजी के बोझ से बचाया जा सकता है। जो विद्यार्थी केवल अच्छे अवसरों के लिए विदेशों में जाते हैं, ऐसे 1 से 5 प्रतिशत बच्चों के लिए उन 95 से 99 प्रतिशत विद्यार्थी के सिर से अँग्रेजी के भूत का बोझ भी दूर किया सकता है। हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों के कुछ मेधावी विद्यार्थी तो केवल इसलिए पढाई छोड देते है, क्योंकि वे अँग्रेजी से तंग आ गये होते है। विषय में उनकी रूचि तो होती है, लेकिन केवल आकलन न होने के कारण कई बच्चों के पढाई छोडने के मामले सामने आते हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में यदि कृषि शास्त्र की पढाई हिंदी में उपलब्ध हो, तो उसका फायदा लाखों किसानों के बच्चों को होगा। दूसरा उपाय यह भी है-कार्यालयीन हिंदी अथवा प्रयोजनमूलक हिंदी को अनिवार्य किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी विद्यालय और महाविद्यालयीन स्तर पर ही भारत की भाषा नीति से परिचित हो जाए। उन्हें हिंदी में सरकारी कामकाज में प्रयोग में आनेवाली शब्दावली, वाक्यांश, नोटिंग-ड्राफ्टिंग, कंप्यूटर पर हिंदी में प्रारूप लिखने, ई-मेल भेजना, सोशल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग आदि का अभ्यास करवाया गया, तो इससे सरकारी नौकरी प्राप्त करते ही हिंदी में कार्य करने में आसानी होगी। इस पर शिक्षा विभाग को भी विचार करना चाहिए।

इन सभी बातों पर गौर करें तो राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की आवश्यकता सरकारी कार्यालयों के स्थान पर भारत की शिक्षा व्यवस्था में होना परमावश्यक है, क्योंकि शिक्षा नीति ही वह स्थान है जहां देश के अन्य नीतियों की नीव होती है।

जिस प्रकार किसी बडी इमारत की नीव से ही उसकी मजबूती तय होती है, उसी प्रकार देश की व्यवस्था की नीव उसकी शिक्षा व्यवस्था ही है। उसे यदि *निज* अर्थात हमारी स्वयं की भाषा में प्रदान किया गया तो निश्चित ही सभी क्षेत्रों की उन्नति निश्चित है। इसीलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा है :

" निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नत्ति को मूल।।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के शूल॥ "

Citation: खटे, राहुल (2016). भारत की शिक्षा नीति और राजभाषा नीति, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 7 (4), 39-44. URL: https://hinditech.in/bharat-ki-shiksha-niti-aur-rajabhasha-niti/